कला संस्कृति में प्रयोग धर्मिता के नये आयाम (छापाकला के सम्बन्ध में)

सपना रल्हन*

कला का आरम्भ मानव–जाति के विकास के साथ हुआ है। प्रागैतिहासिक मनुष्य द्वारा निर्मित कलाकृतियों के अवशेष आज भी विश्व के अने क भागों में सुरक्षित हैं। आखेटक मानव द्वारा सृजित, शिला चित्र कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

पाषाण युगीन मानव–सभ्यता के इतिहास का अत्यन्त समृद्ध, यथार्थतापूर्ण एवं रंगीन विवरण ये शिला चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रागैतिहासिक कला जिस आदिम–संस्कृति की उपज है। उसका विकास तीन चरणों में हुआ।

1. प्रारम्भिक आखेटक संस्कृति, 2. आरम्भिक कृषक संस्कृति, 3. विकसित आखेटक संस्कृति।

अपने प्रारम्भिक रूप की भांति यह तृतीय विकसित संस्कृति भी संग्रहपरक तथा अनुत्पादक थी। दैनिक जीवन में प्रयुक्त उपकरणों की दृष्टि से इस युग को पाषाण–काल भी कहा जाता है। नव पाषाण युगीन मानव ने क्रमशः ताम्र, कास्य एवं लौह युग का पता लगाया और इनसे अनेक प्रकार के कलात्मक औजार एवं बर्तनों की रचना की गयी। यहां आदिकाल की चर्चा से मेरा तात्पर्य कला इतिहास बताना बिल्कुल नहीं है, बल्कि 'कला संस्कृति में प्रयोग धर्मिता के नये आयामों को बताने के लिए पारम्परिक मनुष्य एवं उसके कला संस्कृति तथा रहन–सहन में विकास यात्रा को समझना आवश्यक जान पड़ता है। इसी कड़ी में विज्ञान एवं विकसित रूप भी हमारी कला और संस्कृति के विकास का एक अंग समान है।

इस दृष्टिकोण का परिणाम यह होता है कि यह शान की शाखाओं के बीच अलगाव स्वीकार नहीं करता न तो विज्ञान की सम्पूर्णता में, न अलग–अलग शाखाओं में और न ही कला का कोई स्वामित्व और अंतरंग इतिहास है। ऐसा इतितहास जो किसी खास आंतरिक द्वंद से उत्पन्न होता है। उनका समूचे सामाजिक उत्पादन की गति से निर्धारित होता है। इस तरह कला के अस्तित्वए महत्व, उत्थान और प्रभाव की व्याख्या समूची व्यवस्था के समग्र ऐतिहासिक संदर्भ में ही की जा सकती है। कला का उद्‌भव और विकास समग्र ऐतिहासिक सामाजिक प्रक्रिया का अंग है। कलाकृतियों का सौन्दर्यगत, सारतत्व और मूल्य और इसलिए उसका प्रभाव उस सामान्य और समन्वित प्रक्रिया का अंग है। जिसमें मनुष्य चेतना के जरिये दुनिया पर काबू पाता है और अपनी नित्य नये प्रयोग से कलाकृति में नये–नये आयामों को स्थापित करता चला जाता है। आज भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्व पटल पर कला संस्कृति में प्रयोग धर्मिता को हम स्पष्ट रूप से चिन्हित कर पाते हैं। परन्तु वहीं जब हम इतिहास के पूर्व उन गलियारों से गुजरते हैं तो पाते हैं कि कई प्रयोग अचानक ही हुये होंगे – जब पहली बार कोई मनुष्य कीचर से या कालिख से सने हाथ के पंजों को गुफाओं के पत्थरों पर लगाया होगा तब उसे कहाँ खबर होगी कि उसने दुनिया को एक नयी पद्वति से जोड़ दिया जिसे हम आज (रिफिल प्रिंट) छपा चित्र की शुरूआत मानते हैं। ऐसे ही पेड़ की पत्तियों को कीड़े के

* रिसर्च स्कालर, मेवाड़ विश्वविद्यालय, चितौड़गढ़, राजस्थान।

चाट जाने से स्टेन्सिल पद्वति का विकास हुआ है, जिसे आधुनिक काल में सेरीग्राफी रूप में प्रयोग करते हैं जो व्यवहाकि कला क्षेत्र के साथ–साथ छापाकला क्षेत्र में अनेक विख्यात कलाकारों द्वारा प्रायौगिक रूप में व्यवहार किये जा रहे हैं। अजंता की गुफाओं में रेखा चित्रों की रचना इसी तकनीक से की गई है।

कला में प्रयोग को लेकर हमेशा से ही कलाकारों के बीच एक होड़ एवं आपसी द्वंद सा रहा है। शायद इसी के परिणाम स्वरूप हमें पाश्चात्य देशों में हर युग में कला का नया युग – अनेक वादों (Isum) के रूप में प्रायोगिक विकास होता दिखाई देता है। चाहे वह चित्रकला के क्षेत्र में हो या छापाकला, मूर्तिकला या फिर काव्य एवं संगीत, नृत्य इत्यादि। गौथिक के पश्चात् रेनेसा से लेकर वादा वाद तक न जाने कितने कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों में नये–नये प्रयोग धर्मिता को निभाते चल आये हैं। भारत में पचास के दशक के बाद के समय को हम देखें तो ऐसा लगता है कि अचानक रो गई परिवर्तन कला संस्कृति में प्रयोगिक तौर पर संभव हो चुका था।

भारतीय पुन जागरण का समय इस बात का साक्षी मात्र है नहीं वरन् इस बात को द्योतक है कि कला संस्कृति की यात्रा–नित नये प्रयोग एवं विकास पर ही सम्भव है। बंगाल में गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रकला सिर्फ चित्र मात्र न हो क रवह अपने आप में कला, साहित्य, संस्कृति जैसे अनेक आयामों को धारण किये हुए प्रतीत होता है। गुरू–देव के अनुसार–ध्वनि की भाषा अनन्त के मौन–जगत् का एक क्षुद्रतम बिन्दु मात्र है। विश्व की अमर भाषा तो उसके इंगित द्वारा ही व्यक्त होती है। यह सदा चित्रों और नृत्य की भाषा ही बोलता है। विश्व की प्रत्येक चीज रेखाओं और रंगों की मौन भाषा में यह प्रकट करती है कि वह उत्पत्ति का तार्किक परिणाम अथवा उपयोग की एक वस्तु भर ही नहीं है, वरन् अपने आप में बेजोड़ और अपने अस्तित्व के निगूढ़ रहस्य की वाहिका है। चित्र में चित्रकार असंदिग्ध यथार्थता की भाषा लिखता है और हम केवल इसीसे सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हम उसे देखते हैं। भले ही यह किसी सुन्दरी का चित्रांकन न होकर एक मामूली गधे का ही हो या किसी ऐसी चीज का जो अपने कलापूर्ण–विशेषता के अतिरिक्त प्रकृत्ति के किसी सत्यांश का दावेदान न हो। अक्सर लोग मुझसे मेरे चित्रों के अर्थ पूछा करते हैं। पर मैं अपने चित्रों की ही तरह चुप बना रहता हूँ। उन्हें समझाना मेरा काम नहीं है कि वे अपना अर्थ स्वयं व्यक्त करें। उनमें उनकी अपनी प्रतिकृति से कोई विपर्चच नहीं हैं : यदि वह प्रतिकृति अपने साथ उनका पूर्ण मूल्य और महत्व लिए हुए हैं, तो वे कायम रहते हैं, अत्यथा वैज्ञानिक सत्य या नैतिक औचित्य के बावजूद वे तिरस्कृत हो कर भुला दिये जाते हैं।

गुरूदेव रविन्द्रनाथ के इन विचारों को पढ़ने के बाद इस बात की निश्चिंत्ता हो जाती है कि कला में प्रयोग सिर्फ तकनीकी या दार्शनिक, काव्यात्मकता या फिर शास्त्रियता, केवल एक के होने मात्र से नहीं होता बल्कि ऐसे अनेकानेक तथ्य एक साथ समाहित होने से होता है। छापा कला के क्षेत्र में नन्दलाल ने सहज पाठ जैसे सजह माध्यम के साथ भी अपनी प्रयोग धर्मिता में ईमानदार साबित पाये जाते हैं। भारतीय छापा चित्रकारों की फिर तो एक लम्बी कारवां दिखलाई पड़ती है जो अपनी अलग पहचान लिए हुए प्रयोग धर्मिता के नये–नये आयाम गढ़ते चले जा रहे हैं।

सूचना और अलंकरण जैसे शुरूआती की सीमाओं को तोड़कर छापा बनाने के माध्यम ने जहाँ कला की दुनियाँ में प्रवेश किया व अपनी एक कलात्मक पहचान भी बनायी व सूचना

से परे एक कला भी है। इस विचार ने कलाकारों को एक नया माध्यम सुलभ कराया इसके द्वारा वे कला को लोगों की ओर ले जा सकते थे। कलाकरों को यह माध्यम उनकी संवेदना के अनुरूप और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की अपार संभावनाओं से परिपूर्ण लगा जिसके कारण कलाकारों ने इस माध्यम को उसके प्रारम्भिक उद्देश्य से अलग कर दिया। छापा तकनीक की अपार सम्भावनाएं व अपने साथ कई चीजों का समावेश कर सकने की क्षमता के इस विशिष्ट युग के कारण उसने कलात्मक दुस्साहस को भी बढ़ावा दिया। इस तरह छापे को कला की दुनिया में छापा कला के रूप में स्थापित होने से सफलता मिली।

देखते ही देखते छापा उत्पादन तकनीक एवं सूचना तक ही सीमित न रहकर कलारूप हो गया। अब हमारा इतिहास ही नहीं बल्कि एक साथ भूत, भविष्य और वर्तमान का बोध कराता है। भारत में कमोवेश तकनीकी रूप से अपने प्रारम्भिक चरण में दी है। इसके दो कारण नजर आते हैं। पहला यह कि जिस तेजी के साथ छापाकला का विस्तार उन्नत टेक्नोलोजी व विभिन्न सामग्री के साथ हुआ है वह सहज रूप से भारत के कलाकारों को अप्राप्त है और जो थोड़ी बहुत सुविधा या उपलब्धता है भी वह बहुत महंगी होने के कारण गिने चुने कलाकार ही उसका उपयोग कर पा रहे हैं। दूसरा यह कि अभी हमारी कला शिक्षण संस्थाओं की कार्यशालाएं उचित रूप से आधुनिक तकनीकों और विभिन्न सामग्रियों को जगह नहीं दे पायी है। अभी तक परंम्परागत शिक्षा और उसी की तरह की सुविधा का ही जोर है। कट्टर परम्परावादी लगातार पूरी ताकत से छापे की पांच दशक पुरानी नियमावली थोपने की कोशिश कर रहे है। वे छापा बनाने की विधि (प्रिंट मेकिंग छापा (प्रिंट) और छापाकला (प्रिंट आर्ट) के फर्क को समझ नहीं पा रहे हैं और नतीजे में छापाकला से जुड़े छात्र–छात्रायें सदैव भ्रम और अनिश्चित की स्थिति में रहते हैं। जाहिर है ये थोपे हुए नियम और कायदे उसकी तकनीकी प्रतिभा को कहीं न कहीं कुठिंत कर पाते हैं।

कला में न तो तकनीकी महत्वपूर्ण है और न ही नियम, इस कारण पारम्परिक और अपारम्परिक छापा माध्यमों और तकनीकों को छापाकला में सम्मिलित किया जा रहा है। जिन्हें विश्व की महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय छापाकला है। प्रदर्शनियों में उचित सम्मान और स्थान प्राप्त होता रहा है। भारत में उपलब्ध सामग्री व अविकसित तकनीक के बावजूद भारतीय कलाकारों ने विश्व छापाकला में उल्लेखनीय उपस्थित दर्ज करायी है। उनमें से प्रमुख है श्री कृष्ण रेड्डी, श्री सोमनाथ होर, सुश्री जरीना हाशमी, श्री ज्योति भट्ट, श्री सिद्धार्थ घोष, श्री सन्दीप भाटिया, सुश्री रूपाली रूद्र, श्री श्याम शर्मा, श्री स्वप्न कुमार दास, श्री राजेश अम्बालकर, श्री नवीन कुमार, श्री अनन्त निकल, श्री जयन्ती रावड़िया, श्री परमजीत सिंह एवं कविता नायर इत्यादि। उपरोक्त कलाकारों ने न केवल उपस्थिति दर्ज करायी है बल्कि विश्व की विभिन्न महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में पुरस्कार भी प्राप्त किये है।

सातवें दशक में नई दिल्ली ललित कला अकादमी की एक महत्वपूर्ण निर्णय ने भारत के प्रमुख इस समय मुख्य रूप में मद्रास, भोपाल, भुवनेश्वर, लखनऊ, दिल्ली में स्थापित किये गये, जिसमें देश के विभिन्न राज्यों से कलाकार आकर अपना सृजन कार्य में प्रयोग कर रहे हैं। विशेष कर ग्राफिक्स कला की प्रगति एवं विस्तार के रूप में कई कलाकार दिखाई देते हैं। भारत भवन भोपाल, विनालय अन्तर्राष्ट्रीय प्रिन्ट प्रदर्शनी में भी ग्राफिक्स के अनेक माध्यमों में कार्य इस समय कुछ अलग हटकर दिखाई पड़ता है। छापाकला के क्षेत्र में कृष्णा रेड्डी का प्रयोग सिर्फ भारत ही नहीं वरण सारे संसार में जाना जा रहा है। ग्राफिक्स तकनीक में

'विस्कोसिटी' पद्धति का अनवेषक कृष्णा रेड्डी और मोतीवाला की दूरदर्शिता एवं प्रायोगिक बुद्धि की ही देन है कि छापा कलाकार रंगों की दुनिया में भी तितलियों के समान रंगीन उड़ान भर पा रहे हैं।

सातवें दशक के बाद देखा जाये तो लिथोग्राफी की तकनीक में महत्वपूर्ण कार्य करने वालों में नयना दयाल, किशोर वाला और मगन परमार है वही एचिंग की दिशा में विशेष कार्य करने वालों में ज्योति भट्ट, पुरूषोत्तम धूमाल, गुलाम शेख, लक्ष्मण पाई, भूपेन खक्कर, अनुपम सूद, लक्षमा गौड़, रिनी धुमाल आदि, तो सेरीग्राफी के क्षेत्र में विनोद रे फोटोग्राफी से रूपान्तरण कर बिम्ब और रंगों का छाया माध्यम से जटिल प्रभाव पैदा करते हैं।

आगरा में पिछले कई सालों से दयालबाग विश्वविद्यालय में बी.ए. एवं एम.ए में छापाकला की शिक्षा डॉ० शिवेन्द्र सिंह के मार्गदर्शन में मुख्य रूप से वुडकट के रूप में दी जा रही है। डॉ० रेखा कक्कर भी एक कुशल छापाचित्रकार हैं जो अपनी प्रयोग धर्मिता, आगरा एवं लखनऊ में रहकर निभा रही है। दिल्ली में कई समकालीन कलाकार अपनी निजी कार्यशाला स्थापित कर छापाचित्रण को निरन्तर उत्तम शिखर पर पहुँचा रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. इस्ट्रेशन एण्ड ग्राफिक्स – Vol-I
2. भारतीय छापाचित्रकला – डॉ० सुनील कुमार
3. आर्ट एण्ड आइडियास – मुलक राज
4. डिजाइन टाक – जितेश पटेल
5. भारतीय चित्रकला एवं मूर्ति कला – डॉ० रीता सिंह
6. इण्डियन आर्ट – ए० एल० श्रीवास्तव